e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2320-6710

IJIRSET

International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 10, Issue 4, April 2021

INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 7.512

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

युद्धों को रोकने में आण्विक शस्त्रों की प्रासंगिकता

डॉ रणजीत सिंह

एसोशिएट प्रोफेसर - रक्षा एवं स्त्रातेजिक विभाग , समता पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)

सारांश

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के काल में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच उत्पन्न तनाव की स्थिति को शीत युद्ध के नाम से जाना जाता है।द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और रूस ने कन्धे से कन्धा मिलाकर धूरी राष्ट्रों- जर्मनी, इटली और जापान के विरूद्ध संघर्ष किया था। किन्तु युद्ध समाप्त होते ही, एक ओर ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दूसरी ओर सोवियत संघ में तीव्र मतभेद और असहयोग की भावना उत्पन्न होने लयी । बहुत जल्द ही इन मतभेदों ने तनाव की भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी।रूस के नेतृत्व में साम्यवादी और अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी देश दो खेमों में बँट गये। इन दोनों पक्षों में आपसी टकराहट आमने सामने कभी नहीं हुई, पर ये दोनों गुट इस प्रकार का वातावरण बनाते रहे कि युद्ध का खतरा सदा सामने दिखाई पड़ता रहता था। बर्लिन संकट, कोरिया युद्ध, सोवियत रूस द्वारा आणविक परीक्षण, सैनिक संगठन, हिन्द चीन की समस्या, यू-2 विमान काण्ड, क्यूबा मिसाइल संकट कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने शीतयुद्ध की अग्नि को प्रज्वलित किया। सन् १९९१ में सोवियत रूस के विघटन से उसकी शक्ति कम हो गयी और शीतयुद्ध की समाप्ति हो गयी। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह अस्त्र-शस्त्रों का युद्ध न होकर धमकियों तक ही सीमित युद्ध है। इस युद्ध में कोई वास्तविक युद्ध नहीं लड़ा गया। यह केवल परोक्ष युद्ध तक ही सीमित रहा। इस युद्ध में दोनों महाशक्तियों ने अपने वैचारिक मतभेद ही प्रमुख रखे। यह एक प्रकार का कूटनीतिक युद्ध था जो महाशक्तियों के संकीर्ण स्वार्थ सिद्धियों के प्रयासों पर ही आधारित रहा।

शीत युद्ध एक प्रकार का वाक युद्ध था/ जो कागज के गोलों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो तथा प्रचार साधनों तक ही लड़ा गया। इस युद्ध में न तो कोई गोली चली और न कोई घायल हुआ। इसमें दोनों महाशक्तियों ने अपना सर्वस्व कायम रखने के लिए विश्व के अधिकांश हिस्सों में परोक्ष युद्ध लड़े। युद्ध को शस्त्रायुद्ध में बदलने से रोकने के सभी उपायों का भी प्रयोग किया गया, यह केवल कूटनीतिक उपायों द्वारा लड़ा जाने वाला युद्ध था जिसमें दोनों महाशक्तियां एक दूसरे को नीचा दिखाने के सभी उपायों का सहारा लेती रही। इस युद्ध का उद्देश्य अपने-अपने गुटों में मित्र राष्ट्रों को शामिल करके अपनी स्थिति मजबूत बनाना था ताकि भविष्य में प्रत्येक अपने अपने विरोधी गुट की चालों को आसानी से काट सके। यह युद्ध द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य पैदा हुआ अविश्वास व शंका की अन्तिम परिणति था।के.पी.एस. मैनन के अनुसार - शीत युद्ध दो विरोधी विचारधाराओं - पूंजीवाद और साम्यवाद (Capitalism and Communism), दो व्यवस्थाओं - बुर्जुआ लोकतन्त्र तथा सर्वहारा तानाशाही (Bourgeoise Democracy and Proletarian Dictatorship), दो गुटों - नाटो और वार्सा समझौता, दो राज्यों - अमेरिका और सोवियत संघ तथा दो नेताओं - जॉन फॉस्टर इल्लास तथा स्टालिन के बीच युद्ध था जिसका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा।इस प्रकार कहा जा सकता है कि शीतयुद्ध दो महाशक्तियों के मध्य एक वाक युद्ध था जो कूटनीतिक उपायों पर आधारित था। यह दोनों महाशक्तियों के मध्य द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न तनाव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति था। यह वैचारिक युद्ध होने के कारण वास्तविक युद्ध से भी अधिक भयानक था।

परिचय

विश्व की पांच परमाणु शक्तियां जहां दुनिया को परमाणु अप्रसार की सीख देती हैं वहीं दूसरी ओर 1945 के बाद से उन्होंने हर नौ दिन में एक के औसत से परमाणु परीक्षण किए हैं । परमाणु विषयों की एक अग्रणी अमरीकी पत्रिका के अनुसार 1945 के बाद से विश्व में कम-से-कम 2060 ज्ञात परमाणु परीक्षण हुए हैं ।

इनमें से 85 प्रतिशत परीक्षण अमरीका तथा पूर्व सोवियत संघ द्वारा किए गए । 16 जुलाई, 1945 को न्यू मैक्सिको के आल्मागार्दो रेगिस्तान में अमेरिका द्वारा किये गये विश्व के पहले परमाणु परीक्षण के साथ ही परमाणु युग की शुरुआत हुई थी ।[1,2]

इसके बाद 1949 में सोवियत संघ, 1952 में ब्रिटेन, 1958 में फ्रांस तथा 1964 में चीन अपना-अपना पहला परमाणु परीक्षण करके अमेरिकी बिरादरी में शामिल होते गये । इस बिरादरी में कमोबेश भारत भी तब शामिल हो गया जब उसने 18 मेई, 1974 को

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

पोखरण में अपना प्रथम भूमिगत परमाणु परीक्षण किया । इसके साथ ही शायद कभी न खत्म होने वाली परमाणु परीक्षणों की घुड़दौड़ शुरू हो गयी ।

जहां शीतयुद्ध के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अमेरिका और सोवियत संघ अधिक-से-अधिक परीक्षण करके परमाणु क्षमता के मामले में एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहते थे, वहीं अन्य परमाणु सम्पन्न राष्ट्र भी कहां पीछे रहने वाले थे ।

फलत: आल्मागार्दो परीक्षण के 69 वर्ष पूरे होते-होते परीक्षणों की संख्या 2084 के पार जा पहुंची । 1945 से लेकर अब तक कुल 2060 परमाणु परीक्षण किये जा चुके थे । इसमें से अमेरिका ने सर्वाधिक 1054, रूस ने 715, ब्रिटेन ने 45, फ्रांस ने 210, चीन ने 45, भारत ने 6, पाकिस्तान ने 6 और उत्तर कोरिया ने 3 परीक्षण किये । हां, एक सन्तोषजनक बात यह है कि सोवियत संघ के विघटन के साथ समाप्त हुए शीतयुद्ध के बाद परमाणु परीक्षणों की संख्या में काफी कमी दिखाई पड़ी है ।

जहां आंशिक परीक्षण प्रतिबंध संधि लागू होने और शीतयुद्ध के समाप्त होने के बीच के 25 वर्षों में औसत वार्षिक परीक्षण संख्या लगभग 50 थी, वहीं जनवरी 1989 से दिसम्बर 1995 के सात वर्षों में यह औसत गिरकर लगभग 11 रह गयी ।[3,4]

विश्व में परमाणु हथियारों की संख्या (प्रमुख देशों में 2014)

क्र.सं.	परमाणु हथियार सम्पन्न देश	परमाणु हथियार संख्या (सक्रिय/कुल)	प्रथम परमाणु परीक्षण (तिथि एवं परीक्षण का नाम)
1.	सं. रा. अमेरिका	2,104/4,804	16 जुलाई, 1945 ('ट्रीनिटी')
2.	रूस	1,600/4,480	29 अगस्त, 1949 ("आर डी एस 1")
3.	ब्रिटेन	160/225	3 अक्टूबर, 1952 ('हरिकेन')
4.	फ्रांस	290/300	13 अक्टूबर, 1960 ('गरबोईसे ब्लॉउ')
5.	चीन	अज्ञात/250	16 अक्टूबर, 1964 ('596')
6.	भारत	अज्ञात/110	18 मई, 1974 ('स्माइलिंग बुद्धा')
7.	पाकिस्तान	अज्ञात/120	28 मई, 1998 ('शगाई-I')
8.	दक्षिण कोरिया	अज्ञात/10 से कम	9 अक्टूबर, 2006
9.	इज़रायल	60 से 400 के बीच अनुमानित रूप से	1960 से 1979 के बीच अज्ञात रूप से एवं 1979 में उन्नत श्रृंखला उपकरण द्वारा 'वेला इन्सिडेंट'

स्टाकहोम स्थित इण्टरनेशनल पीस रिसर्च इन्स्टीट्यूट (सिपरी) की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार परमाणु बम बनाने के लिए दो प्रमुख सामग्रियां हैं – प्लूटेनियम और परिष्कृत यूरेनियम जिनका विश्व में कुल भण्डार इस समय क्रमश: एक हजार और 1300 टन है ।

इससे 50 हजार परमाणु बम बनाये जा सकते हैं और इस प्रकार परमाणु हथियारों के वर्तमान भण्डार से दुगने हथियार और बनाए जा सकते हैं । यह स्थिति अत्यन्त खतरनाक है, किन्तु स्पष्ट है कि 'दहलीज' पर खड़ी शक्तियों (इजरायल, पाकिस्तान, भारत आदि) के पास इन पदार्थों का एक नगण्य भंडार है । इसकी बहुतायत तो परमाणु हथियार संपन्न राष्ट्रों (अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस तथा चीन) के पास ही है, अत: परमाणु अप्रसार के बारे में कोई भी बड़ी शुरुआत इन्हीं पांच परमाणु शक्तियों की ओर से होनी चाहिए ।

विचार – विमर्श

उत्तरी कोरिया ने 25 मई, 2009 को 2-5 किलो टन क्षमता का भूमिगत नाभिकीय परीक्षण करके सारे विश्व को स्पष्ट तौर पर संकेत दे दिए कि वह नाभिकीय हथियारों को बनाने की ओर अग्रसर हैं । यह परीक्षण अक्टूबर 2006 में किए गए विस्फोट से पांच गुना बड़ा था । इसी दौरान उत्तरी कोरिया ने छोटी दूरी की मिसाइलों एवं मध्यम दूरी के प्रक्षेपण यान का भी सफल प्रक्षेपण किया ।[5,6]

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद आणविक शक्ति में विभिन्न राष्ट्रों की बढ़ती हुई रुचि के कारण आणविक शस्त्रों के फैलाव का खतरा निरन्तर बढ़ने लगा । विशेषज्ञों ने विश्वास प्रकट किया कि जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है आणविक शस्त्र बनाने वाले राष्ट्रों की संख्या में वृद्धि होने से विश्व में तनाव एवं असुरक्षा के वातावरण में वृद्धि होगी ।

परमाणु अस्त्रों के उत्पादन को सीमित करने तथा उनके प्रयोग एवं परीक्षण पर रोक लगाने के सम्बन्ध में विश्व की दो महाशक्तियों – सोवियत संघ और अमरीका के मध्य बहुत लम्बी वार्ताओं के उपरान्त कतिपय समझौते हुए ।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

आंशिक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (Partial Test Ban Treaty-PTBT) 1963:
मॉस्को में वार्तालाप के फलस्वरूप वायुमण्डल में अणुशक्ति परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाने के सन्दर्भ में एक सन्धि की शब्दावली पर सहमति हो गयी । उक्त सन्धि पर 5 अगस्त, 1963 को तीन अणु शक्तियों के विदेश मन्त्रियों ने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की उपस्थिति में हस्ताक्षर किये एवं उसे 10 अक्टूबर, 1963 को स्वीकार किया गया ।

इससे पूर्व हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों ने तथा संयुक्त राष्ट्र के 98 सदस्यों ने एवं 7 गैर-सदस्यों ने उक्त सन्धि की समुष्टि की । फ्रांस तथा चीन गणराज्य ने इस सन्धि को स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की ।

सन्धि की प्रस्तावना में हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों ने, अपना प्रमुख उद्देश्य "संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के अनुसार कठोर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के सब प्रकार के तथा पूर्ण नि:शस्त्रीकरण के बारे में समझौता करने में शीघ्रता से सफलता पाना, अणु-शस्त्रों सहित सब तरह के शस्त्रों के परीक्षण तथा उत्पादन को समाप्त करने की दृष्टि से शस्त्रों की होड़ को समाप्त करना तय किया ।"[7,8]

"आणविक शस्त्रों के विस्फोट के सब प्रकार के परीक्षणों को समाप्त करने के लिए" सब राष्ट्रों ने अपनी दृढ़ इच्छा प्रकट की तथा "रेडियो क्रियाशील पदार्थों द्वारा मनुष्य के चारों ओर के वायुमण्डल को विषाक्त न होने देने के विषय में" बहुत अधिक बल दिया ।

यह सन्धि पांच धाराओं वाली है, जो निम्नांकित हैं:
a. पहली धारा में तीनों राष्ट्रों द्वारा संकल्प किया गया कि वे अपने अधिकार-क्षेत्र और नियन्त्रण में विद्यमान किसी भी प्रदेश के वायुमण्डल में, इसकी सीमाओं में, बाह्य अन्तरिक्ष में, प्रादेशिक अथवा महासमुद्रों के जल में कोई भी आणविक विस्फोट नहीं करेंगे ।
b. दूसरी धारा में संशोधन की व्यवस्था है । सन्धि में संशोधन का प्रस्ताव किसी भी राष्ट्र की सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है । यदि हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों में से एक-तिहाई राष्ट्र प्रस्ताव के पक्ष में हों तो संशोधनों पर विचार हो सकता है ।

c. तीसरी धारा के अनुसार इस सन्धि पर कोई भी देश हस्ताक्षर कर सकता है । यह व्यवस्था है कि हस्ताक्षरकर्ता देश इस सन्धि पर अपनी संसद या राष्ट्रीय परिषद का समर्थन प्राप्त करेगा और ऐसे समर्थन को सोवियत संघ, अमरीका व ग्रेट ब्रिटेन के पास जमा कराना पड़ेगा ।

d. चौथी धारा में लिखा है कि यह सन्धि असीमित काल के लिए है । यद्यपि हस्ताक्षरकर्ता प्रत्येक राष्ट्र को यह अधिकार है कि वह अपनी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता का प्रयोग करते हुए उस समय स्वयं को इस सन्धि के बन्धनों से मुक्त कर ले, जब वह यह अनुभव करे कि इससे उसके देश का सर्वोच्च हित संकट में पड़ गया है, तथापि हटने वाले राष्ट्र को तीन माह पूर्व नोटिस देना होगा ।[9,10]

e. पांचवीं धारा के अनुसार इस सन्धि के अंग्रेजी व रूसी भाषा के दोनों रूप समान रूप से प्रामाणिक समझे जायेंगे ।

परिणाम

इस सन्धि में जमीन के अन्दर किये जाने वाले (भूमिगत) अणु परीक्षणों को सम्मिलित नहीं किया गया है । संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ऊथांट ने इस सन्धि का महत्व अपने 1962-63 के वार्षिक प्रतिवेदन में प्रस्तुत किया ।

उन्होंने कहा- "परीक्षण प्रतिबन्ध की सन्धि यद्यपि तीन दशाओं तक सीमित है एवं नि:शस्त्रीकरण की मुख्य समस्या से मिलती-जुलती है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी वह अपने आप में एक प्रमुख उद्देश्य है ।" इससे आणविक विस्फोटों से उत्पन्न बढ़ती हुई रेडियो क्रियाशील धूल के खतरे से भी मानवता को बचाने का उद्देश्य सीधी तरह पूरा हो जाता है ।
इसके अतिरिक्त, आणविक शस्त्रों पर रोक तथा महाविनाश के नये शस्त्रों के विकास पर प्रतिबन्ध लगाने में सहायता मिलेगी एवं इस तरह शस्त्रों की होड़ को कम किया जा सकेगा । इस सन्धि से भूमिगत परीक्षणों पर प्रतिबन्ध सहित एक विस्तृत सन्धि करने का मार्ग उपलब्ध हो सकेगा ।[11,12]

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अणु विज्ञान तेजी से बहुत-से राष्ट्रों में फैल गया । सारे विश्व के कई हजार वैज्ञानिक एवं तकनीशियन इस नये कार्य में प्रशिक्षित किये गये । अणु क्षेत्र में इस तकनीकी विकास की प्रक्रिया से परमाणु शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग की दृष्टि से बहुत प्रगति हुई । दुर्भाग्यवश, अणु शस्त्र बनाने का कार्यक्रम अणु के शान्तिपूर्ण कार्यक्रम की तुलना में अन्त तक गुप्त रहता है ।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

इस प्रकार अणुशक्ति में समस्त विश्व की बढ़ती हुई रुचि के कारण आणविक शस्त्रों के जमा होने से खतरा निरन्तर बढ़ता जा रहा है । यह चिन्ता 1959 के बाद से संयुत्त राष्ट्र महासभा में स्वीकृत हुए बहुत-से प्रस्तावों से सुस्पष्ट है जिसमें अणु शस्त्रों के और अधिक विस्तार को रोकने के लिए समझौते के प्रयास के लिए कहा गया ।

1967 में प्रकाशित विशेषज्ञों के प्रतिवेदन में कहा गया था कि अणु शस्त्र बनाने वाली वर्तमान पांच महाशक्तियों के अतिरिक्त विश्व में सात अन्य राष्ट्र भी ऐसे हैं, जो रचनात्मक कार्यों में प्रयुक्त अपने साधनों के अतिरिक्त आणविक शस्त्रीकरण को भी विकसित कर सकते हैं ।

विशेषज्ञों ने विश्वास प्रकट किया कि जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है अणु शस्त्र बनाने वाले राष्ट्रों की संख्या में वृद्धि होने पर वर्तमान आणविक शस्त्रागारों का विस्तार होने से समस्त विश्व में अधिक तनाव एवं असुरक्षा के वातावरण में वृद्धि होगी ।

विशेषज्ञों की यह मान्यता थी कि सुरक्षा की समस्या का निदान आणविक शस्त्र रखने वाले देशों की संख्या बढ़ाने से नहीं हो सकता एवं न ही आणविक शस्त्र रखने वाले वर्तमान राष्ट्रों की शक्ति से इसे पाया जा सकता है ।[13,14]

सोवियत संघ और अमरीका द्वारा अगस्त 1967 में अलग-अलग परन्तु एक जैसी सन्धियों के प्रारूप प्रस्तुत किये गये जिनमें अणु शस्त्रों के और अधिक संगृहीत न करने के लिए जोर दिया गया था । 12 जून, 1968 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भारी बहुमत से उक्त प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी ।

1 जुलाई, 1968 को परमाणु अप्रसार सन्धि (Non-Proliferation Treaty) हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत की गयी एवं उसी दिन अमरीका, ब्रिटेन, सोवियत संघ तथा 50 से अधिक राष्ट्रों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये एवं वह सन्धि 5 मार्च, 1970 से प्रभावी हो गयी ।

उक्त सन्धि के अन्तर्गत यह व्यवस्था थी कि कोई भी अणु शक्ति वाला राष्ट्र अकेले या मिलकर अपने शस्त्र किसी भी अन्य राष्ट्रों को नहीं देंगे । अणु-शक्ति वाले देशों को आयुध वाले राष्ट्रों से किसी भी प्रकार के आणविक अस्त्र प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं करना चाहिए ।

अन्तर्राष्ट्रीय आणविक शक्ति संस्था के साथ वार्तालाप के उपरान्त किये जाने वाले समझौते के अन्तर्गत गैर-अणु शस्त्र वाले देशों द्वारा संरक्षण मानकर चलने की व्यवस्था है जिससे सन्धि के अन्तर्गत उत्तरदायित्वों को पूरा करने की व्यवस्था का मूल्यांकन हो सके ।

सन्धि में यह भी व्यवस्था है कि गैर-अणु शक्ति वाले देशों की बिना किसी भेदभाव के कम कीमत पर आणविक विस्फोटों के शान्तिपूर्ण उपयोग के द्वारा प्राप्त बड़े लाभ मिल सकेंगे । सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाला प्रत्येक राष्ट्र, आणविक शस्त्रों की होड़ को समाप्त करने एवं आणविक निःशस्त्रीकरण को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए बाध्य है ।

यदि उक्त सन्धि के कारण किसी राष्ट्र के सर्वोच्च हितों का हनन होता हो एवं उसके कारण कोई असाधारण घटनाएं हो रही हों तो वे सन्धि से अलग हो सकने के लिए स्वतन्त्र है । सन्धि में यह व्यवस्था थी कि 'सन्धि के लागू होने के 25 वर्ष के उपरान्त एक सम्मेलन बुलाकर उक्त सन्धि को अनिश्चित काल तक जारी रखने अथवा किसी अतिरिक्त निश्चित अवधि के लिए उसे बढ़ाने पर निर्णय लिया जायेगा ।'[15,16]

संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ऊथांट ने उक्त सन्धि के सन्दर्भ में अपनी टिपणी में कहा कि आणविक महायुद्ध के खतरे को सीमित करने में सहयोग करने के अतिरिक्त "यह सन्धि विकासशील राष्ट्रों के लिए नये अवसर प्रदान करेगी क्योंकि अस्त्रों के उत्पादन तथा अधिग्रहण को त्यागने के उपरान्त ये राष्ट्र अपनी सामग्री एवं धन के बहुत बड़े अपव्यय के भार से मुक्त होकर, उपलब्ध साधनों को आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक प्रगति में लगा सकते हैं ।"

उन्होंने यह भी कहा कि- "इस सन्धि ने विशेषकर आणविक शस्त्रों वाले महादेशों के ऊपर एक नया एवं गम्भीर उत्तरदायित्व डाल दिया है जिसके कारण आणविक अस्त्रों की होड़ को समाप्त करने, आणविक निःशसीकरण तथा सब प्रकार के एवं पूर्ण निःशसीकरण के सन्दर्भ में सन्धि स्थापित करने के उपायों के बारे में वार्तालाप चलाया जा सकता है ।"

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

सन्धि के प्रारूप पर सबसे अधिक आपत्ति फ्रांस, इटली, पश्चिमी जर्मनी और भारत को थी । भारत ने आणविक अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये । भारत के अनुसार यह संधि भेदभावपूर्ण है, असमानता पर आधारित है और एकपक्षीय एवं अपूर्ण है ।[17,18]

भारत को अपनी इस नीति के कारण परमाणु क्लब के सदस्यों की कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा । भारत का मानना है कि आणविक आयुधों के प्रसार को रोकने और पूर्ण निशस्त्रीकरण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्षेत्रीय नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जाने चाहिए ।

11 मई, 1995 को अप्रसार सन्धि के पक्षकार राज्यों ने इस सन्धि का अनिश्चितकालीन विस्तार करने का निर्णय लिया । अप्रसार सन्धि की समीक्षा और विस्तार सम्मेलन के दौरान, पक्षकार राज्यों ने इस सन्धि के सार्वभौमिकरण को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया और विशिष्ट रूप से भारत, इजरायल और पाकिस्तान से इस सन्धि में शामिल होने के लिए आह्वान किया ।

ऐसा भी कहा जाता है कि यह सन्धि छोटे राष्ट्रों के हितों को सुरक्षित रखने और समयानुकूल परिवर्तन करने में सक्षम नहीं है । इस सन्धि के द्वारा एक ओर तो यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि जो राष्ट्र अभी तक परमाणु बम नहीं बना सके हैं, वे भविष्य में भी नहीं बनायेंगे तथा दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से अणुविहीन राष्ट्रों को अणु शक्तिसम्पन्न राष्ट्र द्वारा आणविक हमले के समय जो गारण्टी दी गयी, वह अपर्याप्त है ।

इसके अतिरिक्त, परमाणु सन्धि करने वाले राष्ट्रों के पास ऐसा कोई मापदण्ड नहीं है जिससे सैनिक कार्यों व असैनिक कार्यों में स्पष्ट रूप से विभाजन किया जा सके ताकि वह शंका न रहे कि असैनिक कार्यों में किये गये अणु प्रयोग सैनिक कार्य में प्रयुक्त हो सकेंगे ।

बड़े राष्ट्रों ने यह व्यवस्था नहीं की कि वे स्वयं भी अब अणु शक्ति का उत्पादन और प्रसार नहीं करेंगे । इस सन्धि का अर्थ यह लगाया जाता है कि अणु प्रतियोगिता में रूस और अमरीका अन्य किसी राष्ट्र को आगे नहीं आने देना चाहते ।

4 जुलाई, 1974 को अमरीका और सोवियत संघ के मध्य दस-वर्षीय अणु आयुध परिसीमन समझौता हुआ, जिसे 31 मार्च, 1976 से लागू किया जाना निश्चित किया गया । समझौते के अनुसार दोनों ने 150 किलो टन से अधिक भूमिगत आणविक परीक्षणों को रोकने तथा अपने प्रक्षेपास्त्रों पर नयी सीमा लगाने का निश्चय प्रकट किया । यह निश्चित किया गया कि शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए किये गये विस्फोट इस आंशिक प्रतिबन्ध व्यवस्था की परिधि में नहीं आयेंगे ।

1979 में अमरीका और सोवियत संघ में साल्ट-2 समझौते पर हस्ताक्षर हुए । इसके बाद इस सन्धि का दोनों देशों की संसद द्वारा अनुमोदन होना था । अमरीकी कांग्रेस इस पर विचार कर ही रही थी कि अफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप हो गया । राष्ट्रपति कार्टर ने इस हस्तक्षेप के विरोध में साल्ट-2 के अनुमोदन को स्थगित करा दिया और इस प्रकार एक गतिरोध की स्थिति आ गयी ।

वाशिंगटन शिखर सन्धि पर 8 दिसम्बर, 1987 को रीगन और गोर्बाच्योव के हस्ताक्षर हो गये । सन्धि में दोनों देश मध्यम व कम दूरी के प्रक्षेपास्त्र नष्ट करने को सहमत हो गये । इस सन्धि से कुल मिलाकर 1,139 परमाणु हथियार नष्ट किये जाने थे । इन हथियारों की मारक क्षमता 50 किमी. से 5 हजार किमी. है ।

यह सभी प्रक्षेपास्त्र भूमि पर से मार करने वाले हैं । इस सन्धि का महत्व इस बात में नहीं है कि इससे कितनी विनाशक सामग्री खत्म हुई है । इसके विपरीत इसका महत्व गुणात्मक है । विश्व में इस बात का भरोसा पैदा हुआ है कि इन महाशक्तियों में अपने विनाशकारी अस्त्रों को खत्म करने का साहस तो पैदा हुआ ।

निष्कर्ष

सी.टी.बी.टी. अर्थात् व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि विश्व भर में किए जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के उद्देश्य से लायी गयी सन्धि या समझौता है जिसका 1993 में भारत अन्य देशों के अतिरिक्त अमेरिका के साथ सह प्रस्तावक था; लेकिन 1995 में उसने यह कहते हुए कि यह सन्धि सार्वभौमिक परमाणु निरस्त्रीकरण के समयबद्ध कार्यक्रम से जुड़ी हुई नहीं है, सह प्रस्तावक बनने से इन्कार कर दिया ।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

भारत के अनुसार सन्धि के प्रस्तावित मसौदे में परमाणु निरस्त्रीकरण का कोई प्रावधान नहीं रखा गया है और यह सन्धि बहुत ही संकीर्ण है, क्योंकि यह केवल नए विस्फोट रोकने की बात करती है, पर नए तकनीकी विकास एवं नए परमाणु शस्त्रों के विषय में चुप है ।[19]

सन्धि का स्वरूप, परमाणु राष्ट्रों की तकनीकी उपलब्धता को बरकरार रखकर उनके हितों की रक्षा करने के लिए अधिक है न कि सपूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए । महासभा में बहस के दौरान अनेक देशों ने भारत द्वारा उठायी गई आपत्तियों को सही बताया ।

इस सन्धि पर 24 सितम्बर, 1996 से हस्ताक्षर प्रारम्भ हुए थे । अब तक कुल मिलाकर 164 राष्ट्रों ने सन्धि पर हस्ताक्षर एवं पुष्टिकरण किया है । किन्तु सन्धि के प्रभावी होने के लिए उन सभी 44 देशों द्वारा इसकी पुष्टि किया जाना आवश्यक है जिनके पास परमाणु शस्त्र अथवा परमाणु विद्‌युत् संयन्त्र अथवा परमाणु क्षमता उपलब्ध है । विविध परमाणु क्षमताओं वाले इन 44 राष्ट्रों में से अभी तक 25 ने ही सन्धि का अनुमोदन किया है । 13 अक्टूबर, 1999 को अमेरिकी सीनेट ने इसे 48 के मुकाबले 51 मतों से अस्वीकार कर दिया था ।

सन्धि के अनुमोदन के लिए दो-तिहाई मतों का इसके पक्ष में होना आवश्यक था । भारत, पाकिस्तान एवं उत्तर कोरिया ने इस पर अभी तक हस्ताक्षर भी नहीं किए हैं । परमाणु शक्ति के रूप में घोषित पांच राष्ट्रों- अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस व चीन ने यद्यपि इस पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, किन्तु इनमें से केवल ब्रिटेन व फ्रांस ने ही सन्धि की पुष्टि की है ।

सी.टी.बी.टी. के कार्यान्वयन की प्रगति के मूल्यांकन के उद्‌देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक विशेष सम्मेलन का आयोजन 6-8 अक्टूबर, 1999 को विएना में किया गया जिसमें 92 देशों के 400 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस सम्मेलन का आयोजन सन्धि के उसी प्रावधान के अन्तर्गत किया गया था जिसमें कहा गया है कि सन्धि को हस्ताक्षर के लिए उपलब्ध कराए जाने की तिथि (24 सितम्बर, 1996) के तीन वर्ष के भीतर यदि विविध परमाणु क्षमताओं वाले सभी 44 राष्ट्रों द्वारा इस सन्धि का अनुमोदन नहीं किया गया तो संयुक्त राष्ट्र के विशेष सम्मेलन में आगे की कार्यवाही के लिए विचार किया जाएगा ।[20,21]

संदर्भ

1) Barzilai, Gad (1996). Wars, Internal Conflicts and Political Order: A Jewish Democracy in the Middle East. Albany: State University of New York Press.
2) Beer, Francis A. (1974). How Much War in History: Definitions, Estimates, Extrapolations, and Trends. Beverly Hills: SAGE.
3) Beer, Francis A. (1981). Peace against War: The Ecology of International Violence. San Francisco: W.H.Freeman.
4) Beer, Francis A. (2001). Meanings of War and Peace. College Station: Texas A&M University Press.
5) Blainey, Geoffrey (1973). The Causes of War. Simon and Schuster.
6) Butler, Smedley (1935). War is a Racket.
7) Chagnon, N. (1983). The Yanomamo. Holt, Rinehart & Winston.
8) Clausewitz, Carl Von (1976). On War, Princeton University Press
9) Codevilla, Angelo (2005). No Victory, No Peace. Rowman and Littlefield
10) Codevilla, Angelo; Seabury, Paul (2006). War: Ends and Means (2 ed.). Potomac Books.
11) Fog, Agner (2017). Warlike and Peaceful Societies: The Interaction of Genes and Culture. Open Book Publishers. doi:10.11647/OBP.0128. ISBN 978-1-78374-403-9.
12) Fornari, Franco (1974). The Psychoanalysis of War. Translated by Pfeifer, Alenka. NY: Doubleday Anchor Press. ISBN 9780385043472.
13) Fry, Douglas (2004). "Conclusion: Learning from Peaceful Societies". In Kemp, Graham (ed.). Keeping the Peace. Routledge. pp. 185–204.
14) Fry, Douglas (2005). The Human Potential for Peace: An Anthropological Challenge to Assumptions about War and Violence. Oxford University Press.
15) Fry, Douglas (2009). Beyond War. Oxford University Press.
16) Gat, Azar (2006). War in Human Civilization. Oxford University Press.
17) Heinsohn, Gunnar (2003). Söhne und Weltmacht: Terror im Aufstieg und Fall der Nationen [Sons and Imperial Power: Terror and the Rise and Fall of Nations] (PDF) (in German). Orell Füssl.
18) Howell, Signe; Willis, Roy (1990). Societies at Peace: Anthropological Perspectives. London: Routledge.

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 10, Issue 4, April 2021 ||

DOI:10.15680/IJIRSET.2021.1004166

19) James, Paul; Friedman, Jonathan (2006). Globalization and Violence, Vol. 3: Globalizing War and Intervention. London: Sage Publications.
20) James, Paul; Sharma, RR (2006). Globalization and Violence, Vol. 4: Transnational Conflict. London: Sage Publications.
21) Keegan, John (1994). A History of Warfare. Pimlico.

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 7.512

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

www.ijirset.com

Scan to save the contact details